International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(3): 323-327

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(3): 323-327
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 02-03-2022
Accepted: 08-04-2022

Dr. Supriya Sanju
Assistant Professor,
Department of Sanskrit,
Amity Center for Sanskrit and Indic Studies, Amity School of Liberal Arts, Amity University, Haryana, India

Corresponding Author:
Dr. Supriya Sanju
Assistant Professor,
Department of Sanskrit,
Amity Center for Sanskrit and Indic Studies, Amity School of Liberal Arts, Amity University, Haryana, India

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते

Dr. Supriya Sanju

सारांश
भारतीय दर्शन के अनुसार मानव जीवन मृत्यु के चक्रों में फंस कर सांसारिक दुखों में उलझता जाता है। किन्तु इस सृष्टि में ईश्वर ने मानव मन को शीतलता और शांति प्रदान करने हेतु और दुखी हृदय को शोक तथा संशय से दूर करने हेतु कलाओं की उत्पति की है। वैदिक ग्रंथों में चौसठ कलाओं की चर्चा है। जिनमें संगीत को सर्वोच्य कला के रूप में माना जाता है। संगीत रत्नाकर के अनुसार गीतं वाद्य तथा नृत्य त्रयं सगीतमुच्यते - अर्थात् गीत वाद्य और नृत्य - इन तीनों का समुच्चय ही संगीत है। परन्तु भारतीय संगीत का अध्ययन करने पर यह आभास होता है कि इन तीनों में गीत की ही प्रधानता रही है तथा वाद्य और नृत्य गीत के अनुगामी रहे हैं। एक अन्य परिभाषा के अनुसार सम्यक् प्रकारेण यद् गीयते तत्संगीतम् - अर्थात् सम्यक् प्रकार से जिसे गाया जा सके वही संगीत है। अन्य शब्दों में स्वर ताल शुद्ध आचरण हाव-भाव और शुद्ध मुद्रा के गेय विषय ही संगीत है। वास्तव में स्वर और लय ही संगीत का अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य का आधार है।

मुख्य शब्द: गायन. वाद्य, नृत्य, संगीत, स्वर, लय, मनुष्य प्राचीन

प्रस्तावना
गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते। अर्थात गायन वाद्य और नृत्य इन तीनों को संगीत कहा जाता है। गीत में जब सम उपसर्ग लगाते हैं तब संगीत बनता है जिसका अर्थ है सम्यक गीत। इस प्रकार संगीत में गीत, वाद्य एवं नृत्य तीनों का समावेश है। तात्पर्य यह है कि ये तीनों संगीत के अंग है। ये कहना सर्वथा उचित होगा कि ये तीनों एकदूसरे के पूरक है किन्तु इन अंगों में से गीत को ही संगीत का प्रमुख माना गया है।

"नृत्यं वाद्यानुगम प्रोक्तं गीतानुवर्ती च।"

अर्थात नृत्य वाद्य का अनुगामी होता है क्योंकि नृत्य को मृदंग, तबले या अन्य ताल वाद्यों का सहारा लेना होता है, जबकि वाद्य गीत का अनुवर्ती होता है क्योंकि गाते-बजाते समय वाद्य गान का अनुसरण किया करते हैं। इस बात को इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि बजाने वाला व्यक्ति जिन स्वर समूहों को बजाता है, उन स्वर समूहों का मन हीं मन गुनगुनाता है या उन स्वरों की मन में कल्पना करता है, अतः ये कह सकते हैं की वाद्य का आदर्श या आधार गान हीं होता है। स्वर और लय की कला को भी संगीत कहते हैं। तातपर्य है कि संगीत वह ललित कला है, जिसमें स्वर और लय के द्वारा हम अपने भावों को प्रकट करते हैं। सुव्यवस्थित ध्वनि, जो रस की सृष्टि करे, संगीत कहलाती है। गायन, वादन व नृत्य ये तीनों ही प्रायः अत्यंत ही प्राचीन है।

यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्य के विकास के साथ साथ ही संगीत का भी विकास हुआ। अतः जितना प्राचीन मनुष्य है उतना ही प्राचीन संगीत भी है। गान मानव के लिए प्राय: उतना ही स्वाभाविक है जितना भाषा की अभिवक्ति । क्योकि विद्वानों की मान्यता के अनुसार कब से मनुष्य ने गाना प्रारंभ किया, यह बतलाना उतना ही कठिन है जितना कि ये बताना कठिन है कि कब से उसने बोलना प्रारंभ किया। जब स्वर और लय व्यवस्थित रूप धारण करते हैं तब एक कला का प्रादुर्भाव होता है और इस कला को संगीत कहते हैं।

मुख्य बिंदु

उत्पत्ति

संगीत का आदिम स्रोत प्राकृतिक ध्वनियाँ ही है। प्राक् संगीत-युग में मनुष्य के प्रकृति की ध्वनियों और उनकी विशिष्ट लय को समझने का प्रयास किया । हर तरह की प्राकृतिक ध्वनियाँ संगीत का आधार नहीं हो सकतीं, अत: भाव पैदा करने वाली ध्वनियों को परखकर संगीत का आधार बनाने के साथ-साथ उन्हें लय में बाँधने का प्रयास भी किया गया होगा। प्रकृति की वे ध्वनियाँ जिन्होंने मनुष्य के मन-मस्तिष्क को स्पर्श कर उल्लसित किया, वही सभ्यता के विकास के साथ संगीत का साधन बनीं। संगीत के विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। दार्शनिकों ने नाद के चार भागों परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी में से मध्यमा को संगीतोपयोगी स्वर का आधार माना। डार्विन ने कहा कि पशु रति के समय मधुर ध्वनि करते हैं। मनुष्य ने जब इस प्रकार की ध्वनि का अनुकरण आरम्भ किया तो संगीत का उद्भव हुआ। कार्ल स्टम्फ ने भाषा उत्पत्ति के बाद मनुष्य द्वारा ध्वनि की एकतारता को स्वर की उत्पत्ति माना। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कहा कि ‘‘संगीत की उत्पत्ति मानवीय संवेदना के साथ हुई। उन्होंने संगीत को गाने, बजाने, बताने (केवल नृत्य मुद्राओं द्वारा) और नाचने का समुच्चय बताया।

संगीत को ईश्वर का स्थान प्राप्त है, इसीलिए इस विधा में शुद्धता और शास्त्रीयता का विशेष महत्व है। सात शुद्ध और पांच कोमल स्वरों के माध्यम से मन को साधने का उपाय है संगीत। इस संगीत का प्रारंभ वैदिक काल से भी पूर्व का है। संगीत का मूल स्रोत वेदों को माना जाता है। हिंदु परंपरा मे ऐसा मानना है कि ब्रह्मा ने नारद मुनि को संगीत वरदान में दिया था।

भारतीय संगीत परम्परा में यह माना गया है कि संगीत के आदि प्रेरक शिव और सरस्वती है। इसका तात्पर्य यही जान पड़ता है कि मानव इतनी उच्च कला को बिना किसी दैवी प्रेरणा के, केवल अपने बल पर, विकसित नहीं कर सकता।

भारतीय संगीत का आदि रूप वेदों में मिलता है। वेद के काल के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है, किंतु उसका काल ईसा से लगभग 2000 वर्ष पूर्व था - इसपर प्राय: सभी विद्वान् सहमत है। इसलिए भारतीय संगीत का इतिहास कम से कम 4000 वर्ष प्राचीन है।

वेदों में वाण, वीणा और कर्करि इत्यादि तंतु वाद्यों का उल्लेख मिलता है। अवनद्ध वाद्यों में दुदुंभि, गर्गर इत्यादि का, घनवाद्यों में आघाट या आघाटि और सुषिर वाद्यों में बाकुर, नाडी, तूणव, शंख इत्यादि का उल्लेख है। यजुर्वेद में 30वें कांड के 19वें और 20वें मंत्र में कई वाद्य बजानेवालों का उल्लेख है जिससे प्रतीत होता है कि उस समय तक कई प्रकार के वाद्यवादन का व्यवसाय हो चला था।

सम्पूर्ण विश्व में प्राचीन संगीत सामवेद में मिलता है। उस समय "स्वर" को "यम" कहते थे। साम का संगीत से इतना घनिष्ठ संबंध था कि साम को स्वर का पर्याय समझने लग गए थे। छांदोग्योपनिषद् में यह बात प्रश्नोत्तर के रूप में स्पष्ट की गई है। "का साम्नो गतिरिति? स्वर इति होवाच" (छा. उ. 1। 8। 4)। (प्रश्न "साम की गति क्या है?" उत्तर "स्वर"। साम का "स्व" अपनापन "स्वर" है। "तस्य हैतस्य साम्नो य: स्वं वेद, भवति हास्य स्वं, तस्य स्वर एव स्वम्" (बृ. उ. 1। 3। 25) अर्थात् जो साम के स्वर को जानता है उसे "स्व" प्राप्त होता है। साम का "स्व" स्वर ही है।वैदिक काल से प्रारम्भ भारतीय संगीत की परम्परा निरन्तर विकसित और समृद्ध होती रही।

संगीत क्या है इस प्रश्न का उत्तर भारतीय संगीतकारों ने विविध रूप से देने का प्रयास किया है। शारंगदेव द्वारा लिखित 'संगीत रत्नाकर' के अनुसार गीतं वाद्य तथा नृत्य त्रयं सगीतमुच्यते - अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य - इन तीनों का समुच्चय ही संगीत है। परन्तु भारतीय संगीत का अध्ययन करने पर यह आभास होता है कि इन तीनों में गीत की ही प्रधानता रही है तथा वाद्य और नृत्य गीत के अनुगामी रहे हैं। एक अन्य परिभाषा के अनुसार, सम्यक् प्रकारेण यद् गीयते तत्संगीतम् - अर्थात् सम्यक् प्रकार से जिसे गाया जा सके वही संगीत है। अन्य शब्दों में स्वर, ताल, शुद्ध, आचरण, हाव-भाव और शुद्ध मुद्रा के गेय विषय ही संगीत है। वास्तव में स्वर और लय ही संगीत का अर्थात् गीत, वाद्य और नृत्य का आधार है।तीनो स्वतंत्र कला होते हुए भी एक दूसरे की पूरक है। भारतीय संगीत की दो प्रकार प्रचलित है; प्रथम कर्नाटक संगीत, जो दक्षिण भारतीय राज्यों में प्रचलित है और हिन्दुस्तानी संगीत शेष भारत में लोकप्रिय है। भारतवर्ष की सारी सभ्यताओं में संगीत का बड़ा महत्व रहा है। धार्मिक एवं सामाजिक परंपराओं में संगीत का प्रचलन प्राचीन काल से रहा है। इस रूप में, संगीत भारतीय संस्कृति की आत्मा मानी जाती है। वैदिक काल में अध्यात्मिक संगीत को मार्गी तथा लोक संगीत को 'देशी' कहा जाता था।

कालांतर में यही शास्त्रीय और लोक संगीत के रूप में दिखता है।

भारतीय संगीत अपनी मधुरता, लयबद्धता तथा विविधता के लिए जाना जाता है। वर्तमान भारतीय संगीत का जो रूप दृष्टिगत होता है, वह आधुनिक युग की प्रस्तुति नहीं है, बल्कि यह भारतीय इतिहास के प्रारम्भ के साथ ही जुड़ा हुआ है। वैदिक काल में ही भारतीय संगीत के बीज पड़ चुके थे। सामवेद उन वैदिक ऋचाओं का संग्रह मात्र है, जो गेय हैं। प्राचीन काल से ही ईश्वर आराधना हेतु भजनों के प्रयोग की परम्परा रही है। यहाँ तक की यज्ञादि के अवसर पर भी समूहगान होते थे। ध्यान देने की बात है कि प्राचीन काल की अन्य कलाओं के समान ही भारतीय कला भी धर्म से प्रभावित थी। वास्तव में भारतीय संगीत की उत्पत्ति धार्मिक प्रेरणा से ही हुई है। परन्तु धीरे-धीरे यह धर्म को तोड़कर लौकिक जीवन से संबन्धित होती गई और इसी के साथ नृत्य कला, वाद्य तथा गीतों के नये-नये रूपों का आविष्कार होता गया। कालांतर में नाट्य भी संगीत का एक हिस्सा बन गया।

संगीत' शब्द 'सम्+ग्र' धातु से बना है। अन्य भाषाओं में 'सं' का 'सिं' हो गया है और 'गै या 'गा' धातु (जिसका भी अर्थ गाना होता है) किसी न किसी रूप में इसी अर्थ में अन्य भाषाओं में भी वर्तमान है। ऐंग्लोसैक्सन में इसका रूपान्तर है 'सिंगन' (singan) जो आधुनिक अंग्रेजी में 'सिंग' हो गया है, आइसलैंड की भाषा में इसका रूप है 'सिग' (singja), (केवल वर्ण विन्यास में अन्तर आ गया है,) डैनिश भाषा में है 'सिंग (Synge), डच में है 'त्सिंगन' (tsingen), जर्मन में है 'सिंगेन' (singen)। अरबी में 'गना' शब्द है जो 'गान' से पूर्णतः मिलता है। सर्वप्रथम 'संगीतरत्नाकर' ग्रन्थ में गायन, वादन और नृत्य के मेल को ही 'संगीत' कहा गया है। वस्तुतः 'गीत' शब्द में 'सम्' जोड़कर 'संगीत' शब्द बना, जिसका अर्थ है 'गान सहित'। नृत्य और वादन के साथ किया गया गान 'संगीत' है। शास्त्रों में संगीत को साधना भी माना गया है।

भारतीय संगीत अपनी मधुरता लयबद्धता तथा विविधता के लिए जाना जाता है। वर्तमान भारतीय संगीत का जो रूप दृष्टिगत होता है वह आधुनिक युग की प्रस्तुति नहीं है बल्कि यह भारतीय इतिहास के प्रारम्भ के साथ ही जुड़ा हुआ है। वैदिक काल में ही भारतीय संगीत के बीज पड़ चुके थे। सामवेद उन वैदिक ऋचाओं का संग्रह मात्र है जो गेय हैं। प्राचीन काल से ही ईश्वर आराधना हेतु भजनों के प्रयोग की परम्परा रही है। यहाँ तक की यज्ञादि के अवसर पर भी समूहगान होते थे। ध्यान देने की बात है कि प्राचीन काल की अन्य कलाओं के समान ही भारतीय कला भी धर्म से प्रभावित थी। वास्तव में भारतीय संगीत की उत्पत्ति धार्मिक प्रेरणा से ही हुई है। परन्तु धीरे-धीरे यह धर्म को तोड़कर लौकिक जीवन से संबन्धित होती गई और इसी के साथ नृत्य कला वाद्य तथा गीतों के नये-नये रूपों का आविष्कार होता गया। कालांतर में नाट्य भी संगीत का एक हिस्सा बन गया। समय के साथ संगीत की विभिन्न धाराएँ विकसित होती गई नये-नये राग नये-नये वाद्य यंत्र और नये-नये कलाकार उत्पन्न होते गये।

गीत का इतिहास

स्वर, पद और ताल से युक्त जो गान होता है वह गीत कहलाता है।गीत, सहित्य की एक लोकप्रिय विधा है। इसमें एक मुखड़ा तथा कुछ अंतरे होते हैं। प्रत्येक अंतरे के बाद मुखड़े को दोहराया जाता है। गीत को गाया भी जाता है। प्राचीन समय में जिस गान में सार्थक शब्दों के स्थान पर निरर्थक या शुष्काक्षरों का प्रयोग होता था वह निर्गीत या बहिर्गीत कहलाता था। तनोम, तनन या दाड़ा दिड़ दिड़ या दिग्ले झंटुं झंटुं इत्यादि निरर्थक अक्षरवला गान निर्गीत कहलाता था। भरत के समय में गीति के आधारभूत नियत पदसमूह को ध्रुवा कहते थे। नाटक में प्रयोग के अवसरों में भेद होने के कारण पाँच प्रकार के ध्रुवा होते थे- प्रावंशिकी, नैष्क्रामिकी, आक्षेपिकी, प्रासदिकी और अंतरा। स्वर और ताल में जो बँधे हुए गीत होते थे वे लगभग 9वीं 10वीं सदी से प्रबंध कहलाने लगे। प्रबंध का प्रथम भाग, जिससे गीत का प्रारंभ होता था, उद्ग्राह कहलाता था, यह गीत का वह अंश होता था जिसे बार बार दुहराते थे और जो छोड़ा नहीं जा सकता था। ध्रुव शब्द का अर्थ ही है 'निश्चित, स्थिर'। इस भाग को आजकल की भाषा में टेक कहते हैं। अंतिम भाग को 'आभोग' कहते थे। कभी कभी ध्रुव और आभोग के बीच में भी पद होता था जिसे अंतरा कहते थे। अंतरा का पद प्रायः 'सालगसूड' नामक प्रबंध में ही होता था। जयदेव का गीतगोविंद प्रबंध में लिखा गया है। प्रबंध कई प्रकार के होते थे जिनमें थोड़ा थोड़ा भेद होता था। प्रबंध गीत का प्रचार लगभग चार सौ वर्ष तक रहा। अब भी कुछ मंदिरों में कभी कभी पुराने प्रबंध सुनने को मिल जाते हैं। प्रबंध के अनंतर ध्रुवपद गीत का काल आया। यह प्रबंध का ही रूपांतर है। ध्रुवपद में उद्ग्राह के स्थान पर पहला पद स्थायी कहलाया। इसमें स्थायी का ही एक टुकड़ा बार बार दुहराया जाता है। दूसरे पद को अंतरा कहते हैं, तीसरे को संचारी और चौथे को आभोग। कभी कभी दो या तीन ही पद के ध्रुवपद मिलते हैं। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (15वीं सदी) के द्वारा ध्रुवपद को बहुत प्रोत्साहन मिला। तानसेन ध्रुवपद के ही गायक थे। ध्रुवपद प्रायः चौताल, आड़ा चौताल, सूलफाक, तीव्रा, रूपक इत्यादि तालों में गाया जाता है। धमार ताल में अधिकतर होरी गाई जाती है। 14वीं सदी में अमीर खुसरो ने खयाल या ख्याल गायकी का प्रारंभ किया। 15वीं सदी में जौनपुर के शर्की राजाओं के समय में खयाल की गायकी पनपी, किंतु १८वीं सदी में यह मुहम्मदशाह के काल में पुष्पित हुई। इनके दरबार के दो गायक अदारंग और सदारंग ने

सैकड़ों खयालों की रचना की। खयाल में दो ही तुक होते हैं-स्थायी और अंतरा। खयाल अधिकतर एकताल, आड़ा चौताल, झूमरा और तिलवाड़ा में गाया जाता है। इसको अलाप, तान, बालतान, लयबाँट इत्यादि से सजाते हैं।

वाद्य यंत्र का इतिहास

संगीत में गायन तथा नृत्य के साथ-साथ वादन का भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। वादन का तात्पर्य विशिष्ट पद्धति से निर्मित किसी वाद्य यंत्र पर थाप देकर, फूंककर या तारों में कम्पन उत्पन्न करके लयबद्ध तरीके से संगीतमय ध्वनि उत्पन्न करना है। स्पष्ट है कि वादन के लिए किसी वाद्य-यंत्र का होना आवश्यक है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक प्रकार के वाद्य यंत्रों का विकास हुआ है जिनको मुख्य रूप से चार वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। घन-वाद्य: जिसमें डंडे, घंटियों, मंजीरे आदि शामिल किये जाते हैं जिनको आपस में ठोककर मधुर ध्वनि निकाली जाती है। अवनद्ध-वाद्य या ढोल: जिसमें वे वाद्य आते हैं, जिनमें किसी पात्र या ढांचे पर चमड़ा मढ़ा होता है जैसे- ढोलक। सुषिर-वाद्य: जो किसी पतली नलिका में फूंक मारकर संगीतमय ध्वनि उत्पन्न करने वाले यंत्र होते हैं, जैसे- बांसुरी। तत-वाद्य: जिसमें वे यंत्र शामिल होते हैं, जिनसे तारों में कम्पन्न उत्पन्न करके संगीतमय ध्वनि निकाली जाती है, जैसे- सितार।

भरत मुनि के नाट्य शास्त्र (२०० ईसा पूर्व और २०० ईसवी में रचित) में वाद्य यंत्रों को चार समूहों में एकत्रित किया गया है: अवनद्ध वाद्य (ताल वाद्य), घन वाद्य (ठोस वाद्य) , सुषिर वाद्य (वायु वाद्य), और तत वाद्य (तार वाले वाद्य).भारत के वाद्य यंत्रों का भरत मुनि द्वारा दिया गया यह प्राचीन वर्गीकरण १२वीं सदी में यूरोप में अपनाया गया और यूरोप के वाद्य यंत्रों के वर्गीकरण में उपयोग किया गया। बाद में, चार वर्गों को यूनानी नाम दिए गए - तत वाद्य के लिए कोरडोफ़ोन्स, अवनद्ध वाद्य के लिए मेमब्रानोफ़ोन्स, सुषिर वाद्य के लिए एरोफ़ोन्स, और घन वाद्यों के लिए ऑटोफ़ोन्स। इस प्रकार पाश्चात्य वर्गीकरण प्रणाली प्राचीन भारतीय नाट्य शास्त्र पर आधारित है।

प्राचीन भारतीय मूर्तियों और चित्रों में उन वाद्य यंत्रों का उपयोग दर्शाया गया है जिन्हें हम आज देखते हैं। चमड़ा, लकड़ी, धातु और मिटटी के बर्तन जैसी चीज़ो सहित कई विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन प्रक्रिया में उपयोग के कारण वाद्य यंत्रों को बनाने में महान कौशल की आवश्यकता होती है और संगीत और ध्वनिक सिद्धांतों की भी। भारतीय शास्त्रीय संगीत की दो प्रमुख परंपराएँ हैं - हिंदुस्तानी और कर्णाटक। साथ ही, लोक, जनजातीय, इत्यादि जैसी और कई अन्य परंपराएँ भी हैं। प्राचीन काल से, इन परंपराओं के भारतीय संगीतकारों ने, अपनी शैली के अनुरूप, पारंपरिक और देशज वाद्य यंत्रों का विकास किया और उन्हें बजाया। इसलिए, भारत के वाद्य यंत्रों की एक समृद्ध विरासत है और ये इस देश की सांस्कृतिक परंपराओं का अभिन्न अंग हैं।

नृत्य का इतिहास

ऋग्वेद में 'नृति' तथा नृतु का उल्लेख मिलता है तथा उषा काल की सुन्दरता की तुलना सुन्दर बेशभूषायुत्तफ नृत्यांगना से की है। जैमिनी तथा कौशीतकी ब्राह्मण ग्रन्थों में नृत्य और संगीत का एक साथ उल्लेख किया गया है। महाकाव्यों में स्वर्ग तथा पृथ्वी पर नृत्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं। गीत के समान भारतीय नृत्य की भी समृद्ध शास्त्रीय परंपरा विकसित हो चुकी थी। कथा कहते हुए, नृत्य, भावनाओं को व्यक्त करने का सशक्त साधन है।

भारतीय परम्परागत संस्कृति में नृत्यों के द्वारा धर्मिक विचारों को सांकेतिक अभिव्यक्ति दी जाती थी। नटराज के रूप में शिव की मुद्रा, सृष्टि चक्र के निर्माण व ध्वंस को दर्शाती है। नटराज के रूप में शिव की लोकप्रिय प्रतिमा भारतीय जन मानस पर नृत्य के प्रभाव को दर्शाती है। देश के विशेष रूप से दक्षिणी भाग में कोई भी ऐसा मंदिर नहीं है जहां नृत्य करते देवों की विभिन्न मुद्राओं वाली मूर्ति न हो। कत्थकली, मणिपुरी, भरतनाट्यम्, कत्थक, कुचीपुड़ी तथा ओडिसी कुछ भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के प्रकार हैं जो हमारी सांस्कृतिक विरासत का आवश्यक अंग है।

यह कहना कठिन है कि नृत्य का किस समय पर आविर्भाव हुआ परन्तु यह स्पष्ट है कि खुशी को व्यक्त करने के लिए नृत्य अस्तित्व में आया। धीरे-धीरे नृत्य को लोक तथा शास्त्रीय दो भागों में बांटा गया। शास्त्रीय नृत्य को मंदिरों तथा शाही राजदरबारों में प्रस्तुत किया जाता था। मंदिरों में नृत्य धर्मिक उद्देश्य से किये जाते थे जबकि राज दरबार में यह केवल मनोरंजन का साध्न मात्रा था।

भारतीय नृत्यों का इतिहास काफी प्राचीन है। भारतीय नृत्य की समृद्ध ऐतिहासिक परंपरा है। इसे सामाजिक सहभागिता या आध्यात्मिक प्रदर्शन के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। नृत्य सामाजिक, सांस्कृतिक, सौंदर्य और कलात्मक अर्थ का गठन करता है। भारतीय शास्त्रीय नृत्यों के तत्वों का उल्लेख नाट्यशास्त्र में भी किया गया है। भगवान ब्रह्मा ने त्रेता युग की शुरुआत में नाट्यशास्त्र का निर्माण किया। जब उन्होंने नाट्यशास्त्र की रचना की तब भरत मुनि नाट्य के माध्यम से दो कहानियाँ प्रस्तुत करने वाले पहले व्यक्ति थे। भगवान शिव ने तांडव को नाट्यशास्त्र में शामिल कराया। ब्रह्मा ने तब तांडव को नाट्य में शामिल किया। इसमें विभिन्न प्रकार के आसन, हस्त मुद्रा और उनके अर्थ, भावनाओं के प्रकार और उनके वर्गीकरण पर विचार-विमर्श भी शामिल है। आदिम युग से ही नृत्य की समृद्ध और महत्वपूर्ण परंपरा रही है। मोहनजोदड़ो की नाचने वाली लड़की और हड़प्पा काल के टूटे हुए धड़, एक नृत्य की मुद्राएँ बताते हैं। इंद्र,

अश्विन, मारुत और अप्सराओं के लिए नृत्य विवरण का उपयोग किया गया है। नाट्यशास्त्र में नाटक, नृत्य और संगीत का समावेश था। सांची, नागार्जुनकोंडा, मथुरा, अमरावती और एलोरा गुफाओं की मूर्तियां इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं। इस अवधि के दौरान न्यूनतम सरलीकरण सामान्य था। दूसरी अवधि के दौरान क्षेत्रीय शैली में विकास हुआ था। मंदिरों में नृत्य तत्व संस्कृत साहित्य से यह माना गया है कि कवि और नाटककार नृत्य के तकनीकी विवरण में समान रूप से जानकार थे। मध्ययुगीन काल के दौरान निर्मित मंदिर यह साबित करते हैं कि मूर्तिकारों को नृत्य का काफी तकनीकी ज्ञान था। क्षेत्रीय शैलियों की मान्यता ने विभिन्न क्षेत्रों की व्यक्तिगत और शास्त्रीय शैलियों के विकास में और योगदान दिया।

उपसंहार

निष्कर्षतः हम ये कह सकते है कि वैदिक काल से प्रारम्भ भारतीय संगीत की परम्परा निरन्तर फलती-फूलती और समृद्ध होती रही। संगीत मानवीय लय एवं तालबद्ध अभिव्यक्ति है। भारतीय संगीत अपनी मधुरता, लयबद्धता तथा विविधता के लिए जाना जाता है। वर्तमान भारतीय संगीत का जो रूप दृष्टिगत होता है, वह आधुनिक युग की प्रस्तुति नहीं है, बल्कि यह भारतीय इतिहास के प्रारम्भ के साथ ही जुड़ा हुआ है। वैदिक काल में ही भारतीय संगीत के बीज पड़ चुके थे। सामवेद उन वैदिक ऋचाओं का संग्रह मात्र है, जो गेय हैं। प्राचीन काल से ही ईश्वर आराधना हेतु भजनों के प्रयोग की परम्परा रही है। यहाँ तक की यज्ञादि के अवसर पर भी समूहगान होते थे। ध्यान देने की बात है कि प्राचीन काल की अन्य कलाओं के समान ही भारतीय कला भी धर्म से प्रभावित थी। वास्तव में भारतीय संगीत की उत्पत्ति धार्मिक प्रेरणा से ही हुई है। परन्तु धीरे-धीरे यह धर्म को तोड़कर लौकिक जीवन से संबन्धित होती गई और इसी के साथ नृत्य कला, वाद्य तथा गीतों के नये-नये रूपों का आविष्कार होता गया। कालांतर में नाट्य भी संगीत का एक हिस्सा बन गया। समय के साथ संगीत की विभिन्न धाराएँ विकसित होती गई, नये-नये राग, नये-नये वाद्य यंत्र और नये-नये कलाकार उत्पन्न होते गये। भारतीय संगीत जगत अनेक महान् विभूतियों के योगदानों के परिणामस्वरूप ही इतना विशाल रूप धारण कर सका है। इसके अतिरिक्त दो भारतीय महाकाव्यों - रामायण और महाभारत की रचना में संगीत का मुख्य प्रभाव रहा। भारत में सांस्कृतिक काल से लेकर आधुनिक युग तक आते-आते संगीत की शैली और पद्धति में जबरदस्त परिवर्तन हुआ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Natyashastra – Prof Brojmohan chaturvedi
2. Performance Tradition in India – SurseshAwasthi, Ed, Year 2009,
3. AbhinayaDarpana– Nandi Keshwaran.
4. संगीतकाइतिहास – उमेशजोशी
5. परांजपे, शरदचंद्र श्रीधर; भारतीय संगीत का इतिहास चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी
6. बीर, रामअवतार; भारतीय संगीत का इतिहास कनिष्क प्रकाशन, नई दिल्ली
7. सिंह, ठाकुर जयदेव भारतीय संगीत का इतिहास विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी
8. मिश्रा, डॉ लालमणी भारतीस संगीत वाद्य भारतीय ज्ञानपीठ
9. नारद नारदीय शिक्षा मैसूर संस्करण
10. वेद व्यास महाभारत नीलकंठी टीका-सहित, पूना संस्करण
11. वेद व्यास महाभारत शास्त्री संस्करण
12. वेद व्यास श्रीमदभगवत गीता ;गीता प्रेस गोरखपुर
13. भरत मुनि नाट्य शास्त्र टीका बाबूलाल शुक्ल चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी
14. सारंगदेव संगीत रत्नाकर चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी